नियमसार ११० गाथा।

भव्य को... (अभव्य को) है परन्तु प्रगट नहीं होता। इसीलिए है, वह नहीं। अभव्य को भी पारिणामिक भाव है। इसलिए उसे है जो वह नहीं जैसा है। भव्य को प्रगट होता है। पाठ में तो '**सकीयपरिणामो**' है परन्तु परिणाम का अर्थ स्वभाव लेना है। परिणाम अर्थात् पर्याय नहीं। **भव्य को पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण...** उसे तो सहज स्वभाव **पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। वह पंचम भाव...** क्रमबद्ध में भी मूल तो पंचम भाव का ही आश्रय है। क्रमबद्ध में क्रमबद्ध का आश्रय नहीं। क्रमबद्ध में भी पंचम भाव अर्थात् ज्ञायकभाव का आश्रय है। तब उसे क्रमबद्ध का निर्णय होता है।

इसलिए कहते हैं **वह पंचम भाव औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** क्षायिकभाव को अगम्य है। क्षयोपशम, उपशम और क्षायिकभाव में ही वह ज्ञात होता है परन्तु क्षायिकभाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता। इसलिए उसे कहा कि चार विभाव स्वभाव है... आहाहा! उन्हें अगम्य है। उनके आश्रय से वह गम्य नहीं है। परमस्वभावभाव जो सत्त्व है, तत्त्व है, उसके आश्रय से गम्य होता है, ज्ञात होता है। इसलिए **चार विभावस्वभावों को अगोचर है।**

इसीलिए वह पंचम भाव... आहाहा! **उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है।** विकार अर्थात् विशेष भाव। चार जो विशेष भाव हैं, उनसे रहित है। त्रिकाली पंचम परमभाव, पंचम पारिणामिकस्वभावभाव, वह चार भाव— विकाररहित है। विकार अर्थात् विशेषभाव। विकाररहित सामान्य है। आहाहा! ऐसा... है। चार विभाव को अगम्य तो कहा परन्तु चार विभाव को... है। विशेष भाव है। विशेष भाव के आश्रय से सामान्य भाव, पंचम भाव ज्ञात नहीं होता। स्वभाव के आश्रय से पंचम भाव ज्ञात होता है। ज्ञात होता है क्षयोपशम, क्षायिक में। परन्तु वह त्रिकाली वस्तु परम सत् वस्तु त्रिकाली एक स्वभावरूप, पूरा चैतन्य तत्त्व, उसके आश्रय से ज्ञात होता है। आहाहा! क्षायिकभाव के अगम्य कहा और चार भाव विकारवाले कहा। दो... कहे। चार भावों से अगम्य है अर्थात् आत्मा त्रिकाली परम पंचम भाव... और पर्यायें विशेष प्रकार से है,

....विकारभाव कहा। है न ? उदय, उदीरणा—उदय में लाने की उदीरणा है। आहाहा! **ऐसे विविध विकारों से रहित है।**

इस कारण से इस एक को परमपना है,... त्रिकाली जो ध्रुवस्वभाव, त्रिकाली सकल निरावरण अखण्ड एक स्वभाव... **इस एक को परमपना है,...** आहाहा! त्रिकाली स्वभावभाव एकरूप भाव... पंचम भाव... चार को परमपना नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव-केवलज्ञान, मोक्ष को परमपना नहीं। वह... नहीं। आहाहा! वह... है यह पर्याय की अपेक्षा से वह नहीं। स्वकीय परिणाम अर्थात् स्वकीय पारिणामिकभाव - ऐसे अर्थ में शब्द प्रयोग किया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपने भाव के लिये... आहाहा! यह सब कठिन पड़े।.... उसका आश्रय नहीं। प्रगटे पर्याय में परन्तु... पर्याय का आश्रय लेने जाता है तो विकल्प होते हैं। क्षायिक समकित का आश्रय भी जिसे नहीं। विकार भाव अर्थात् विशेष भाव, (उसके) अगम्य है। परमस्वभावभाव के आश्रय से अगम्य है। आहाहा! यह बाहर की धमाधम चले, उसमें यह जँचना (कठिन पड़ता है)। चार भाव को गम्य नहीं है। चार भाव विकारवाले हैं। उन्हें गम्य नहीं, ऐसा कहा और वह विकार—विशेष भाव है, इसलिए उस विशेष भाव के आश्रय से... आहाहा!

इस कारण से इस एक को... स्वकीय परिणाम 'पंचास्तिकाय' में बोल लिया है। ५६वीं गाथा में। वहाँ पारिणामिकभाव... वह पारिणामिकस्वभाव त्रिकाल। ऐसा संस्कृत टीका में है। त्रिकाली पारिणामिकभाव... आहाहा! पारिणामिकभाव अर्थात् पारिणामिक अर्थात् स्वपारिणामिक। त्रिकाली त्रिकाल पारिणामिकभाव। वह गम्य है। उसका आश्रय करे तो ज्ञात हो, ऐसा है। पर्याय का आश्रय करे तो (ज्ञात हो, ऐसा नहीं है)। आहाहा! गजब बात है। इतना सब... कथानुयोग का कहाँ गया ? कहीं गया नहीं। सब है।....

पलटता नहीं, जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं, जिसकी एकरूपता मिटती नहीं, कभी अनेकरूप होता नहीं। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव परमपारिणामिक स्वभावभाव, वह एक ही परमभाव है। क्षायिकभाव भी परमभाव नहीं है। आहाहा! क्षायिकभाव को अगम्य कहा अर्थात् कि उसके आश्रय से लक्ष्य नहीं होता। विकारवाला कहा अर्थात् विशेष कहा। इसलिए विशेष के आश्रय से सामान्य ज्ञात नहीं होता और इसलिए उस भाव को अपरमभाव कहा जाता है। आहाहा! है ?

शेष चार विभावों को अपरमपना है। तीन प्रकार प्रयोग किये। कौन से तीन प्रकार ?—कि चार भाव हैं, वे विभावभाव हैं, उनसे अगम्य है। वे विकारवाले हैं अर्थात् विशेषवाले हैं, उनके आश्रय से अगम्य है। वह विशेषभाव है, इसलिए वे अपरमभाव हैं। तीन प्रकार कहकर उनका निषेध कर दिया और पहले में चार भाव को अगम्य (कहा), तब पारिणामिकस्वभाव को गम्य है (ऐसा कहा)। पारिणामिकस्वभाव विशेषरहित है। पारिणामिकस्वभाव, वह एक परमभावस्वरूप है। आहाहा! जहाँ पूर्ण परमात्मा विराजता है, वहाँ इसे ढलना है। बाकी सब बातें हैं।

चारों अनुयोगों में साररूप से तात्पर्यरूप से अनुयोग में पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में वीतरागभाव, यह चारों ही अनुयोग का सार है। कोई कहे कि चरणानुयोग में अमुक है, अमुक है। उन सबका सार वीतरागभाव है और वीतरागभाव की पर्याय, वह वीतरागभाव की पर्याय के आश्रय से प्रगट नहीं होती। आहाहा! वीतरागभाव की पर्याय वीतरागभाव जो एक परम है, चार से अगम्य है, चार के विशेष से भिन्न है, जिसे एक ही परमपना है। बाकी दूसरा अपरमपना है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? ऐसी बातें।

अब उसमें तो एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रियापंचेन्द्रिया,... मिच्छामि दुक्कड्म हो गया। सामायिक हो गयी। इच्छामि पडिक्कमणा तत्सूत्री करणेणम्। आहाहा! वह तो सब विकल्प की बातें हैं। वह कहीं मोक्षमार्ग की बातें नहीं है। आहाहा! क्योंकि आत्मा मुक्तस्वरूप है। अबन्धस्वरूप कहो या मुक्तस्वरूप कहो; मुक्तस्वरूप कहो या एक परमभावस्वरूप कहो। १४-१५ गाथा में जो अबन्ध कहा है, उसका अर्थ मुक्तस्वरूप। अबन्ध नास्ति से कहा है। अस्ति से वह मुक्तस्वरूप ही प्रभु है। वह चार भाव को स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! गजब बात!

पंचम एक परमभाव; चार जो अपरमभाव है, उनमें नहीं आता, इसलिए स्पर्श नहीं करता, इसलिए उन्हें स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, फिर सोनगढ़वालों का एकान्त कहे नहीं ? यह कहे और वह कहे। आहाहा! बाहर में ऐसी धमाधम चलती हो, शिक्षणशिविर और हजारों लोग इकट्ठे हों। हो... हा... हो... हा... उसमें पाँच-पचास हजार, लाख-दो लाख दे, उसे तो ऐसे धर्म धुरन्धर भारी धर्मी कहा जाता है। लो।

यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिकभाव के आश्रय से भी परमभाव प्रगट नहीं होता, ले!

तेरे रुपये-फुपये तो कहीं रह गये। आहाहा! क्षायिकभाव प्रगट होता है, वह परमपारिणामिकभाव के आश्रय से प्रगट होता है। उसके (क्षायिकभाव के) आश्रय से वह प्रगट नहीं होता अर्थात् कि पहले क्षायिक समकित आदि हुआ हो, उसके आश्रय से क्षायिक केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा! चौथे (गुणस्थान में) क्षायिक समकित हुआ हो परन्तु उसके आश्रय से क्षायिक केवलज्ञान नहीं होता।

एक ओर कहना कि मोक्ष का मार्ग है, उससे मोक्ष होता है। यह व्यवहार का कथन है। मोक्षमार्ग, उसका फल वह मोक्ष। अधूरी / अपूर्ण शुद्धदशा, वह पूर्ण शुद्धदशा का कारण है, वह यहाँ नहीं। पूर्ण शुद्धदशा के आश्रय से भी पूर्ण दशा नहीं रहती, उत्पन्न नहीं होती, टिकती नहीं, बढ़ती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। फिर लोग न कहे कि यह सब पूरे दिन फिर यह करना... यह करना... यह करना... बस, करना कुछ नहीं। कर्म-कर्ता। अरे! यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिकभाव का कर्ता भी नहीं है। सुन न! पर के कर्ता की बात भी कहाँ करनी? आहाहा!

ऐसा द्रव्य दृष्टि में आये बिना... द्रव्य के आश्रय से ही क्षायिकभाव प्रगट होता है। केवलज्ञान भी द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। केवलज्ञान, मोक्षमार्ग के आश्रय से प्रगट होता है - ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा! यहाँ तो क्षायिकभाव की मोक्ष की पर्याय भी परमपारिणामिक एक स्वभावभाव के आश्रय से होती है। इसलिए **शेष चार विभावों को अपरमपना है।** आहाहा! गजब है न! क्षायिकभाव, केवलज्ञान, अनन्त आनन्द प्रगटे, वह भी अपरमभाव है; परमभाव नहीं। कायम टिकते तत्त्व का रसकन्द, अनन्त आनन्द का कन्द, रसकन्द, ध्रुवकन्द के आश्रय से क्षायिकभाव प्रगट होता है। क्षायिकभाव के आश्रय से क्षायिकभाव प्रगट नहीं होता, इसलिए इस नियमसार की ५०वीं गाथा में कहा है कि पर्याय है, वह परद्रव्य है। क्षायिक पर्याय जो है... आहाहा! क्षायिक समकित है, क्षायिक यथाख्यातचारित्र है, वह परद्रव्य है, क्योंकि उसके आश्रय से कोई दशा प्रगट नहीं होती। आहाहा! पंचम भाव जो भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से क्रमबद्ध का निर्णय, उसके अवलम्बन से क्षायिकभाव की पर्याय की प्रगटता, उसके अवलम्बन से मोक्षमार्ग की पर्याय की उत्पत्ति और उसके अवलम्बन से मोक्ष की उत्पत्ति (होती है)। मोक्षमार्ग के कारण मोक्ष की

उत्पत्ति (होती है), यह (बात) भी नहीं है। **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में...** अर्थात् कि... यह पर्याय की बात नहीं है। **समस्त...** पाठ है न? '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो**' त्रिकाली भाव। '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो**'... '**सकीयपरिणामो**' अर्थात् त्रिकाली स्वभाव। आहाहा! है इसमें? है या नहीं? यह **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में...** आहाहा! तीर्थंकरगोत्र, वह कर्मरूपी विषवृक्ष का फल। आहाहा! तीर्थंकरप्रकृति, आहारकशरीर, आहारक अंगोपांग का बन्धन, वह सब कर्मरूपी विष-जहर का वृक्ष। आहाहा! यह अमृत काा सागर उस जहर के वृक्ष को उखाड़ने में समर्थ है। अर्थात् कि इसमें वह है नहीं। है? **मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** और परमभाव में वह है नहीं और उखाड़ डाले कहाँ से? भाषा ऐसी ली है। वह परमभाव कर्म के जहर के वृक्ष को नाश करने के लिये समर्थ है अर्थात् उसमें यह है नहीं। है नहीं अर्थात् वह नाश करने को समर्थ है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : नाश करने में निमित्त है, ऐसा कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त-फिमित्त की यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो परमपारिणामिकभाव ही कर्म को उखाड़ डालने में (समर्थ है) अर्थात् कि कर्म का भाव उसमें है ही नहीं। इसलिए उखाड़ना कहना, वह तो एक अपेक्षा से बात है। आहाहा! परमभाव में अपरमभाव नहीं है। उसमें कर्मभाव तो है ही नहीं, तथापि उसे उखाड़ डालना कहना, वह कथन है। यह (समयसार की) ३४ गाथा में आ गया है। आत्मा राग का नाश करता है, यह नाममात्र कथन है। राग का, हों! यह तो कर्म का लिया है। आत्मा राग का नाश करे, यह नाम कथन है क्योंकि जहाँ स्वभाव का आश्रय होता है, वहाँ राग उत्पन्न नहीं होता, उसे यह नाश करता है—ऐसा कहने में आता है। नाम कथन है। परमार्थ से तो नाश करनेवाला भी नहीं है। आहाहा!

समस्त कर्मरूपी... इसमें सब आ गया न? तीर्थंकरगोत्र की प्रकृति भी आ गयी। १४८ कर्म की प्रकृति में तीर्थंकरगोत्र की प्रकृति आ गयी। वह पंचम भाव उस प्रकृति - जहर के वृक्ष को उखाड़ने में अर्थात् उसमें है ही नहीं। उसमें है ही नहीं अर्थात् उसे उखाड़ने में समर्थ है, ऐसा आरोप से कथन है। आहाहा! ऐसा यह परमभाव **विषवृक्ष के**

मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,... और पहले कहा कि यह परमभाव विभावस्वभाव के अगोचर है। विभाव स्वभाव है, वह विकारवाला है विशेष है। विकार अर्थात् विशेष है। विशेष को सामान्य करता ही नहीं परन्तु यहाँ इस अपेक्षा से ऐसा लिया है। एक सामान्य का जहाँ आश्रय होता है, वहाँ विशेष उत्पन्न होते ही नहीं। विशेष निर्मलदशा उत्पन्न होती है, वह सामान्य के आश्रय से होती है। पूर्व जो निर्मल परिणाम थे, उसके आश्रय से दूसरी निर्मल पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। पूर्व में परिणाम निर्मल थे, इसलिए बाद के परिणाम निर्मल हुए, ऐसा नहीं है क्योंकि उस पर्याय का तो अभाव होता है। तब भावरूप क्या है? अभावभाव तो करता नहीं। अभाव—व्यय, वह भाव को करता नहीं, तो करता कौन है? इतना बतलाने के लिये पंचम पारिणामिकभाव उखाड़ डालता है, ऐसा कहा है। बाकी तो वह उखाड़ता भी नहीं। पंचम भाव की दृष्टि हुई, इसलिए दूसरा भाव उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ऐसा कठिन है!

ध्येय क्या है, उसकी एक ही बात है। पश्चात् साध्य तो प्रगटता ही है। साध्य है, वह क्षायिकभाव है परन्तु ध्येय के आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा! ध्यान के आश्रय से भी वह प्रगट नहीं होता। ध्यान पूर्व की पर्याय है और बाद की पर्याय उसका फल, वह भी यहाँ नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान, पंचम परमभाव कर्म के मूल को उखाड़ डालने में समर्थ है। अर्थात् उसमें कर्म है ही नहीं। आहाहा! परमभाव कर्म को स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! उसे उखेड़ डालने को समर्थ है, ऐसा आरोप से कथन व्यवहार से है। आहाहा! इस प्रकार बहुत बात इसमें आती है। परमभाव ऐसा करे और परमभाव... परमभाव क्या करे? परमभाव तो परमभाव है ही। आहाहा!

त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, नित्य स्वभाव, आनन्द का दल, त्रिकाली आनन्द दल परमभाव के आश्रय से क्षायिकभाव प्रगट होता है, इसलिए कर्म को उखाड़ डालने में समर्थ है, ऐसा उसे आरोप दिया जाता है। बाकी वह तो उखाड़ता भी नहीं, टालता भी नहीं और रखता भी नहीं। उसमें वह है ही नहीं। जिसमें नहीं है, उसे उखाड़ता है, ऐसा कहना... आहाहा! समझ में आया? पर्याय में है और पर्याय में नाश होता है, यह तो बराबर है परन्तु पारिणामिकभाव में तो वह है नहीं। और वह पारिणामिकभाव उसे उखाड़ने में समर्थ है, यह व्यवहार के कथन से परमभाव की महिमा बतायी है। आहाहा!

बारम्बार इसे परमभाव पर दृष्टि करनी है। 'लाख बात की बात निज आतम उर ध्याओ।' पर्याय को भी नहीं। आतम ध्याओ। आहाहा! यह एकान्त नहीं होता? अनेकान्त मार्ग है। वह अनेकान्त है कि इससे होता है और दूसरे से नहीं होता। आहाहा! क्षायिकभाव से क्षायिकभाव नहीं होता। वह तो परमपारिणामिकभाव से होता है। आहाहा! यह भी व्यवहार कहने में आता है। बाकी तो पर्याय, पर्याय से होती है। परमभाव से भी वह पर्याय नहीं होती। आहाहा! गाथा सूक्ष्म आयी है। सवेरे का सूक्ष्म था। अब यह गाथा सूक्ष्म आयी।

ऐसा **समस्त कर्मरूपी...** आहाहा! तीर्थंकरप्रकृति का बन्धन है परन्तु वह भी प्रकृति है, विषवृक्ष है। उस **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** है। ऐसा यह परमभाव। आहाहा! आचार्यों को शब्द थोड़े पड़ते हैं। किस प्रकार परमभाव कहना, इसलिए उखाड़ डालने में समर्थ कहकर समझाया है। बाकी कहाँ उसमें है, उसे उखाड़े? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। लौकिक के व्यवहार के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। लौकिक से विरुद्ध लगे, एकान्त लगे ऐसा है। जिस समय जो होता है, वह होता है, वह भी द्रव्य के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, द्रव्य उसे-चार भाव को उखाड़ डालता है। आहाहा! अर्थात् कि उसमें वह पर्याय है नहीं, ऐसा कहना है। उसमें यह उखाड़ना, वह स्वरूप में नहीं है। इसलिए उखाड़ डालता है, ऐसा वहाँ कथन करने में आया है। आहाहा!

यह परमभाव, त्रिकाल निरावरण... त्रिकाल-निरावरण है। आवरण है नहीं, इस आवरण को उखाड़ता है, ऐसा कहकर वापस और (कहते हैं), त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! भगवान स्वयं भगवत्स्वरूप प्रभु, विशेष पर्यायरहित, वह त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण। निगोद में भी वह त्रिकाल निरावरण ही है। आहाहा! पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग निगोद को विकास रह गया परन्तु द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण ही पड़ा है। भगवान तो उसमें भी ऐसा का ऐसा ही पड़ा है। आहाहा! एक शरीर में अनन्त आत्माएँ, एक शरीर अंगुल के असंख्यवें भाग में अनन्त आत्माएँ (रहते हैं)। वे अनन्त आत्माएँ परमात्मस्वरूप ही स्थित हैं। उनकी अक्षर के अनन्तवें भाग की पर्याय या क्षायिक पर्याय, उसे वह पारिणामिकभाव स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा!

त्रिकाल निरावरण। त्रिकाल निरावरण हुआ तो फिर उसे आवरण उखाड़ डालता

है - (यह) कहाँ आया ? त्रिकाल निरावरण है न ? तो इसके पहले ऐसा कहा कि उखाड़ डालता है। आवरण को उखाड़ डालता है। भाषा, व्यभिचारी भाषा है। वस्तु भिन्न, भाषा भिन्न। भाषा से कितना कहना ? कैसे कहना उसे ? आहाहा ! एक ओर कहा कि उखाड़ने में समर्थ है और एक ओर कहना कि त्रिकाल निरावरण है।

ऐसे **निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष...** त्रिकाल निरावरण ऐसा निज कारणपरमात्मा। निज कारण, ऐसा वापस लिया। ऐसा नहीं कि त्रिकाल निरावरण परमात्मा। कारणपरमात्मा नहीं, निज कारणपरमात्मा, यह कारणपरमात्मा। **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण...** तीव्र मिथ्यात्वकर्म के प्रगटपने के कारण। **कुदृष्टि को,...** आहाहा ! **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** जिसकी दृष्टि में वह चीज़ आयी नहीं, उसे वह है ही नहीं। आहाहा ! धारणा में—ज्ञान में आवे, तो भी उसे वह है। वस्तु है नहीं उसे। वस्तु जो त्रिकाल है, वह अनुभव में आती है, उसे वह है। अनुभव में नहीं आती, उसे वह नहीं है। है, वह नहीं है। आहाहा !

मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,... देखो ! सदा निश्चय से अस्ति धराता होने पर भी। भगवान आत्मा परमस्वभावभाव त्रिकाल सदा अस्ति धराता होने पर भी, अस्ति, उसकी सत्ता होने पर भी। **अविद्यमान ही है...** दृष्टि में आया नहीं, इसलिए उसे तो नहीं है। भले वस्तु हो। परन्तु वस्तु जहाँ दृष्टि में आयी नहीं, ज्ञान में आयी नहीं, उसे तो है ही नहीं। ज्ञान में वह चीज़ आयी नहीं, उसे तो वह नहीं है। समझ में आया ?

विद्यमान होने पर भी,... ऐसा कहा न ? **विद्यमान होने पर भी,...** निश्चय से अस्ति-सत्ताधारक होने पर भी **अविद्यमान ही है...** पर्याय में दृष्टि होने से, उस वस्तु की दृष्टि नहीं होने से, उसे विद्यमान भी अविद्यमान ही है। क्या चीज़ है, वह दृष्टि में आयी नहीं। उसके ज्ञान में वह ज्ञेय आया नहीं, इसलिए वह ज्ञेय उसे आया नहीं, इसलिए वह ज्ञेय विद्यमान होने पर भी ज्ञान में आया नहीं, इसलिए उसे अविद्यमान है। ऐसी तो टीका है। आहाहा !

विद्यमान होने पर भी,... आहाहा ! सत्ता ही पड़ी है। भले मिथ्याश्रद्धा हो, भले

पर्याय में कुदृष्टि हो परन्तु वस्तु तो वस्तु पड़ी ही है। त्रिकाल निरावरण ही है। आहाहा! पर्याय में चाहे जो माने, इससे वस्तु तो विद्यमान ही है परन्तु उसे लक्ष्य में नहीं आयी, इसलिए होने पर भी उसे नहीं है। उसे तो वह पर्याय है, वह है। वस्तु उसे विद्यमान है, वह उसे नहीं है। पर्याय की विद्यमानता है। द्रव्य की विद्यमानता होने पर भी उसे अविद्यमान है। आहाहा! पूरी गाथा ऐसी कठिन है। आहाहा!

विद्यमान त्रिकाल प्रभु विराजमान है। ऐसा का ऐसा त्रिकाल सकल निरावरण अखण्ड एक प्रतिभासमय प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण वस्तु है। उसे राग का भी सम्बन्ध नहीं है। पर्याय के अंश में राग का सम्बन्ध है। द्रव्य में-वस्तु में तो राग का सम्बन्ध भी नहीं है। आहाहा! अब इसमें व्यवहार के रसिक जीवों को कठिन पड़ता है। यह करो... यह करो... मदद करो... दूसरे का संग करो। यहाँ कहते हैं कि यहाँ तो संग करने की भी ना है। असंग को संग क्या? असंग को संग क्या? वस्तु असंग है। आहाहा! वह संग करने जाए, वहाँ राग उत्पन्न होगा। आहाहा! असंग में वह राग नहीं है। वह तो त्रिकाल निरावरण असंग तत्त्व है। भगवान आत्मा सबका आत्मा पर्याय के लक्ष्य बिना देखो तो, पर्यायदृष्टि छूटी है, उस लक्ष्य से देखो तो सब आत्मा विद्यमान परमात्मस्वरूप विराजमान ही है। उसे आवरण भी नहीं और उसे अल्पता भी नहीं तथा उसे विपरीतता भी नहीं। आहाहा! यह घोषणा है।

परमस्वभावभाव... आहाहा! जिसे विद्यमान होने पर भी कुदृष्टि को, दृष्टि की विपरीतता को। (अर्थात्) पर का कर्तापना माननेवाला, राग का कर्तापना माननेवाला पर्यायबुद्धिवन्त को द्रव्यपना विद्यमान होने पर भी पर्यायबुद्धिवान को वह वस्तु नहीं है। एक समय की पर्याय की बुद्धिवाले को (वह वस्तु नहीं है)। वह मिथ्यादृष्टि है। पर्याय मूढा परसमया। आहाहा! एक समय की अवस्था की दृष्टि को मूढ़ दृष्टि को वह है, तथापि उसे नहीं है। उसके ख्याल में आये बिना 'वह है' ऐसा कैसे कहना? आहाहा! है, ऐसा भगवान अन्दर... आहाहा! परमभाव जानने में आया, उसे है। जानने में न आया, उसे है, वह ख्याल में आये बिना वह 'है' वह किस प्रकार से माने? आहाहा!

यह तो १७-१८ गाथा में यही कहा न? पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है। समयसार की

१७-१८ गाथा। पर्याय में... ज्ञान की पर्याय है, उसका स्वतः स्वयं स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। स्वतः स्वभाव है, इसलिए वह स्व को प्रकाशित करता है। आहाहा! परन्तु उसकी नजर वहाँ नहीं है, इसलिए इसे प्रकाशित नहीं करता। आहाहा! पर्याय में स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होने से, द्रव्य-गुण के कारण नहीं, पर्याय में स्व-परप्रकाशक जानने का सामर्थ्य होने से द्रव्य को जानता ही है, तथापि उस सामर्थ्य की ओर इसका लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य पर्याय के ऊपर होने से और पर्याय से आगे जाए तो राग के ऊपर लक्ष्य होने से, इसे विद्यमान है, (तथापि) इसे अविद्यमान है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। इसमें झुण्ड एकत्रित हों, लाखों लोग इकट्ठे हों और यह जँचे नहीं। बात सुनने पर उन्हें (ऐसा लगता है) एकान्त है... एकान्त है... शोर मचाते हैं। सुन, भाई! भगवान! एकान्त ही है।

निश्चयनय सम्यक् एकान्त है। अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त है। पर्याय और रागादि का ज्ञान होने पर भी... आहाहा! सम्यक् एकान्त, वह निश्चयनय है, वह सम्यक् एकान्त वह निश्चयनय वह सत्य है। उसकी अपेक्षा से तो यह पर्याय है नहीं। आहाहा! सम्यक् एकान्त है। यह अनेकान्त है। सम्यक् एकान्त अर्थात् यह है (और) यह नहीं। ऐसा सम्यक् एकान्त, वह अनेकान्त है। अनेकान्त भी अनेकान्त है। अनेकान्त भी अनेकान्त ही है, ऐसा नहीं। अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे नय की अपेक्षा से... आहाहा! सम्यक् एकान्त है। पर्याय में अभाव होने पर भी निश्चयनय के सम्यक् एकान्त की अपेक्षा से, परमभाव की दृष्टि की अपेक्षा से वह भाव है ही नहीं। उसमें वह है ही नहीं। यह सम्यक् एकान्त निश्चय है। आहाहा! सम्यक् एकान्त का ज्ञान हुआ, वह फिर पर्याय है, उसे जानता है, वह व्यवहारज्ञान, प्रमाणज्ञान हुआ परन्तु सम्यक् एकान्त हुआ, उसे वह प्रमाणज्ञान होता है। जिसे सम्यक् एकान्त नहीं हुआ, उसे प्रमाणज्ञान नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा है। वहाँ कहीं ऐसा सुना था? स्थानकवासी में?

मुमुक्षु : दिगम्बर में नहीं तो स्थानकवासी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है। दिगम्बर में बहुत कठिन। अरे रे! कोई प्राणी दुःखी हो, वस्तु की स्थिति से विपरीत मान्यता से वर्तमान दुःखी हो, भविष्य में दुःखी हो, ऐसी किसकी भावना होगी! आहाहा! इसलिए द्रव्यसंग्रह में (धर्मध्यान के भेद) अवाय में कहा न? मैं भी पूर्ण होऊँ और सब पूर्ण होओ। प्रभु! तुम दुःखी न होओ। आहाहा! यह

दु:ख, वह वस्तु ही नहीं है; अवस्तु है। वस्तु तो महा आनन्दमय है। अवस्तु है तो टल सकती है; वस्तु हो, वह टल नहीं सकती। आहाहा! भगवान ऐसा कहकर कहते हैं, हों! द्रव्यसंग्रह में धर्मध्यान का बोल लिया है। जहाँ अवाय (का) बोल लिया है। उस अवाय में धर्मी ऐसा विचार करता है... आहाहा! मैं तो भगवान हूँ, शक्ति से प्रगट होनेवाला ही हूँ। सब परमात्मा शक्ति से हैं। प्रगट पर्याय में परमात्मा होओ। कोई दु:खी न होओ। आहाहा! ऐसा धर्मध्यान का अवाय का बोल है। द्रव्यसंग्रह। द्रव्यसंग्रह है न? उसमें है। आहाहा! सब द्रव्य साधर्मी द्रव्य हैं। जैसा मैं भगवान परमभाव हूँ, वैसे ही सब परमभाव स्वभाव से भरपूर ही है। आहाहा! वह प्रगट होओ, हमारे भी प्रगट होनेवाला है ही। तुम्हें भी प्रगट होओ। कोई दु:खी न होओ, भाई! आहाहा! ऐसी भावना करते हैं।

(समयसार) ३८वीं गाथा में भी आया न? लोकालोक यहाँ आओ, समा जाओ। समयसार की ३८वीं गाथा। यह तो द्रव्यसंग्रह की। आहाहा! यहाँ सब लोकालोक समा जाओ, ज्ञात हो जाओ। पूरे सब जीव सब आत्मा में समा जाओ। आहाहा! विशाल दृष्टि! द्रव्यदृष्टि हुई, वहाँ विशाल दृष्टि हुई। विशाल दृष्टि होने पर सबको भगवानरूप से (देखता है)। बहिन की पुस्तक में आता है, हम तो सर्व को सिद्ध समान देखते हैं, चैतन्यस्वरूप देखते हैं। वे चाहे जैसे माने। आता है न? भाई! आहाहा! वे चाहे जैसा माने। आहाहा! भगवान! तेरा आत्मा भी परमस्वभावरूप है। तू चाहे जैसा मान, ऐसा कहकर वह तो पर्याय की व्याख्या है। वस्तु तो परमात्मा ही है, भाई! और है, वैसा हो जा। आहाहा! प्राप्त की प्राप्ति कर ले। आहाहा! यहाँ कहेंगे कि अभव्य को यह नहीं जँचेगा।

(कारण कि मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है)। जो वस्तु ख्याल में ही आयी नहीं, इतनी और यह ऐसी है, ऐसा जो ज्ञान में ही नहीं आया, उसे यह इतना है, यह किस प्रकार बैठे (जँचे)? उसे किस प्रकार बैठे? उसे तो वह है, वह नहीं है। आहाहा! **(कारण कि मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है)।** आहाहा! पूर्ण परमात्मा, पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ। पूर्ण निरावरण त्रिकाल निरावरणस्वरूप हूँ, ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं अर्थात् श्रद्धा में, ख्याल में वस्तु आयी नहीं। ज्ञान में यह ज्ञेय इतना और इतना है। यह ज्ञान में ज्ञेय इतना आया नहीं, इसलिए उसे तो है ही नहीं। उसे तो जितना ज्ञान में आया, उतना वह है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु अन्दर

परिपूर्ण भरी है, वह ज्ञान में आवे नहीं, उसके लिये तो विद्यमान होने पर भी अविद्यमान है। वह भले अविद्यमान माने, परन्तु वस्तु तो विद्यमान है ही। जिसे विद्यमान का ज्ञान हुआ है, वह भले अविद्यमान माने, परन्तु उसकी चीज़ विद्यमान है, ऐसा तो उसे भी दृष्टि में है। महा भगवान विराजता है। आहाहा!

नित्यनिगोद के जीवों को भी... देखा? निगोद में से कभी निकलते नहीं। आहाहा! एक शरीर के अनन्तवें भाग में से निकले। ऐसे तो निगोद के असंख्य शरीर हैं। एक शरीर को अनन्तवें भाग के जीव बाहर आते हैं। आहाहा! ओहोहो! जैसी वस्तु विद्यमान त्रिकाल है, उसी प्रकार से पर्याय में **नित्यनिगोद के जीवों को भी...** आहाहा! **शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** वह अन्दर विद्यमान है, वह नहीं है—ऐसा नहीं है, ऐसा। **'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** अभव्य को तो परिणति होती नहीं, ऐसा यह नहीं है। आहाहा! है?

नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है... उसका त्रिकाल स्वभाव, वह अभव्यत्व पारिणामिक जैसा नहीं है। 'अभव्यत्वपारिणामिक' को तो पर्याय में कभी आता ही नहीं और इसे तो पर्याय में आता है, इस प्रकार से है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? अभव्य जीव को विद्यमान तो है, परन्तु ख्याल में आता नहीं, इसलिए उसे नहीं है। उसी प्रकार दूसरे सबको नहीं है। आहाहा! ख्याल में आवे, ऐसा उस प्रकार से अन्दर है। आहाहा! देखा? **'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है (परन्तु शुद्धरूप से ही है)।** यह वस्तु तो उसकी शुद्धरूप ही है। वह पर्याय में भले चाहे जैसा माने। वस्तु शुद्ध (है, ऐसा) अपने को पर्यायदृष्टि गयी है, तो उस पर्यायदृष्टि से सामनेवाले को न देखकर शुद्ध वस्तु है, परमस्वभावभाव से भरपूर है, ऐसा (देखता है)। उसका दृष्टान्त देंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)